Chapter दो

गजेन्द्र का संकट

इस स्कंध के द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ अध्यायों में यह बताया गया है कि भगवान् ने किस तरह चतुर्थ मनु के राज्यकाल में हाथियों के राजा (गजेन्द्र) को संरक्षण प्रदान किया। इस द्वितीय अध्याय में बताया गया है कि जब हाथियों का राजा अपनी पत्नियों सहित जलविहार कर रहा था, तो सहसा एक घड़ियाल (मगरमच्छ) ने उस पर आक्रमण कर दिया और गजेन्द्र ने अपनी रक्षा के लिए भगवान् के चरणकमलों पर आत्मसमर्पण कर दिया।

क्षीरसागर के मध्य में एक अत्यन्त ऊँचा तथा सुन्दर पर्वत है, जिसकी ऊँचाई दस हजार योजन अर्थात् अस्सी हजार मील है। यह पर्वत त्रिकूट कहलाता है। त्रिकूट पर्वत की घाटी में एक सुरम्य उद्यान है, जिसका नाम ऋतुमत है, जिसे वरुण ने बनाया था। उस क्षेत्र में एक अत्यन्त सुन्दर सरोवर भी है। एक बार हाथियों का प्रमुख अपनी पत्नियों सहित उस सरोवर में जलविहार करने गया जिससे जलचरों में हलचल मच गई। इससे उस सरोवर के अत्यन्त बलशाली प्रमुख घड़ियाल ने तुरन्त ही

हाथी के पाँव पर आक्रमण कर दिया। इस तरह हाथी तथा घड़ियाल में महान्युद्ध छिड़ गया। यह युद्ध एक हजार वर्षों तक चलता रहा। उसमें न तो हाथी मरा, न घड़ियाल, किन्तु जल में रहने से धीरे-धीरे हाथी का बल घटने लगा और घड़ियाल का बल बढ़ता रहा। इससे घड़ियाल को अधिकाधिक प्रोत्साहन मिलता रहा। तब अपने को असहाय पाकर एवं अपनी रक्षा का अन्य साधन न देखकर हाथी ने भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण की।

श्रीशुक उवाच
आसीद्गिरिवरो राजंस्त्रिकूट इति विश्रुतः ।
क्षीरोदेनावृतः श्रीमान्योजनायुतमुच्छ्रितः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; आसीत्—था; गिरिवरः—विशाल पर्वत; राजन्—हे राजा; त्रि-कूटः—त्रिकूट; इति—इस प्रकार; विश्रुतः—विख्यात; क्षीर-उदेन—क्षीरसागर द्वारा; आवृतः—घिरा हुआ; श्रीमान्—अत्यन्त सुन्दर; योजन—आठ मील की नाप; अयुतम्—दस हजार; उच्छ्रितः—अत्यन्त उच्च।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्! त्रिकूट नाम का एक विशाल पर्वत है। यह दस हजार योजन (८० हजार मील) ऊँचा है। चारों ओर से क्षीरसागर द्वारा घिरे होने के कारण इसकी स्थिति अत्यन्त रमणीक है।

तावता विस्तृतः पर्यक्त्रिभिः शृङ्गैः पयोनिधिम् ।
दिशः खं रोचयन्नास्ते रौप्यायसहिरण्मयैः ॥ २ ॥
अन्यैश्च ककुभः सर्वा रत्नधातुविचित्रितैः ।
नानाद्रुमलतागुल्मैर्निर्घोषैर्निर्झराम्भसाम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

तावता—उस प्रकार से; विस्तृतः—लम्बाई तथा चौड़ाई (८० हजार मील); पर्यक्—चारों ओर; त्रिभिः—तीन; शृङ्गैः—चोटियों से; पयः-निधिम्—क्षीरसागर में एक द्वीप में स्थित; दिशः—सारी दिशाएँ; खम्—आकाश; रोचयन्—सुहावना; आस्ते—खड़ा हुआ; रौप्य—चाँदी; अयस—लोह; हिरण्मयैः—तथा सोने से बना; अन्यैः—अन्य चोटियों समेत; च—भी; ककुभः—दिशाएँ; सर्वाः—सभी; रत्न—रत्न; धातु—तथा खनिज से; विचित्रितैः—सुन्दर ढंग से अलंकृत; नाना—अनेक; द्रुम-लता—पौधे तथा लताओं; गुल्मैः—तथा झाड़ियों से; निर्घोषैः—ध्वनि से; निर्झर—झरने के; अम्भसाम्—जल की।

पर्वत की लम्बाई तथा चौड़ाई समान (८० हजार मील) है। इसकी तीन प्रमुख चोटियाँ, जो लोहे, चाँदी तथा सोने की बनी हैं, सारी दिशाओं एवं आकाश को सुन्दर बनाती हैं। पर्वत में अन्य चोटियाँ भी हैं, जो रत्नों तथा खनिजों से पूर्ण हैं और सुन्दर वृक्षों, लताओं एवं झाड़ियों से अलंकृत हैं। पर्वत के झरनों से जो ध्वनि उत्पन्न होती है, वह सुहावनी है। इस प्रकार यह पर्वत

सभी दिशाओं में सुन्दरता को बढ़ाते हुए खड़ा है।

स चावनिज्यमानाङ्घ्रिः समन्तात्पयऊर्मिभिः ।
करोति श्यामलां भूमिं हरिन्मरकताश्मभिः ॥ ४॥

शब्दार्थ

सः—वह पर्वत; च—भी; अवनिज्यमान-अङ्घ्रिः—जिसका चरण सदा प्रक्षालित होता है; समन्तात्—चारों ओर से; पयः-ऊर्मिभिः—दूध की लहरों से; करोति—बनाता है; श्यामलाम्—गहरा हरा; भूमिम्—भूमि को; हरित्—हरी; मरकत—मरकत मणि; अश्मभिः—पत्थरों से।

पर्वत के पाद की भूमि सदैव दूध की लहरों से प्रक्षालित होती रहती है, जो आठों दिशाओं में (उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम तथा इनके बीच की दिशाओं में) मरकत मणियाँ उत्पन्न करती रहती है।

तात्पर्य : हमें *श्रीमद्भागवत* से पता चलता है कि समुद्र कई प्रकार के हैं। कहीं दूध का सागर है, कहीं सुरा का सागर, तो कहीं घृत, तेल या मीठे जल का सागर है। इस तरह इस ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार के समुद्र हैं। आधुनिक विज्ञानी अपने सीमित ज्ञान के बल पर इन कथनों को चुनौती नहीं दे सकते; वे हमें किसी भी लोक के विषय में पूरी जानकारी नहीं दे सकते यहाँ तक कि जिस लोक में हम रह रहे हैं उसके विषय में भी। इस श्लोक से हम समझ सकते हैं कि यदि किन्हीं पर्वतों की घाटियाँ दुग्ध से प्रक्षालित हों तो उनमें मरकत मणियाँ उत्पन्न होती हैं। किसी में इतनी सामर्थ्य नहीं कि भगवान् द्वारा संचालित भौतिक प्रकृति के कार्यकलापों का अनुकरण कर सके।

सिद्धचारणगन्धर्वैर्विद्याधरमहोरगैः ।
किन्नरैरप्सरोभिश्च क्रीडद्भिर्जुष्टकन्दरः ॥ ५॥

शब्दार्थ

सिद्ध—सिद्ध लोक के वासी; चारण—चारणलोक के वासी; गन्धर्वैः—तथा गन्धर्वलोक के वासियों द्वारा; विद्याधर—विद्याधर लोक के वासी; महा-उरगैः—सर्पलोक के वासियों द्वारा; किन्नरैः—किन्नरों के द्वारा; अप्सरोभिः—अप्सराओं से; च—तथा; क्रीडद्भिः—खेलकूद में लगी; जुष्ट—विलास में लगे; कन्दरः—गुफाएँ।

उच्चलोकों के वासी—सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर, उरग, किन्नर तथा अप्सराएँ—इस पर्वत में क्रीड़ा करने के लिए जाते हैं। इस तरह पर्वत की सारी गुफाएँ स्वर्गलोकों के निवासियों से भरी रहती हैं।

तात्पर्य : जिस प्रकार सामान्य लोग खारे (लवण) सागर में क्रीड़ा करते हैं उसी प्रकार उच्चलोकों

के निवासी क्षीर सागर में जाते हैं। वे क्षीरसागर में तैरते हैं और त्रिकूट पर्वत की गुफाओं में नाना प्रकार की क्रीड़ाओं का आनन्द लेते हैं।

यत्र सङ्गीतसन्नादैर्नदद्गुहममर्षया ।
अभिगर्जन्ति हरयः श्लाघिनः परशङ्कया ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

यत्र—उस (त्रिकूट) पर्वत में; सङ्गीत—गायन की; सन्नादैः—ध्वनि से; नदत्—प्रतिध्वनित; गुहम्—गुफाएँ; अमर्षया—असह्य क्रोध या ईर्ष्या के कारण; अभिगर्जन्ति—दहाड़ते हैं; हरयः—सिंह; श्लाघिनः—अपने बलपर अत्यन्त गर्वित; पर-शङ्कया—दूसरे सिंह की आशंका से।

गुफाओं में स्वर्ग के निवासियों के गायन की गूँजती हुई ध्वनियों के कारण वहाँ के सिंह, जिन्हें अपनी शक्ति पर गर्व है, असह्य ईर्ष्या के कारण यह सोचकर गर्जना करते हैं कि वहाँ पर कोई अन्य सिंह वैसे ही दहाड़ रहा है।

तात्पर्य : उच्चतर लोकों में, न केवल विभिन्न प्रकार के मनुष्य ही हैं, अपितु सिंह तथा हाथी जैसे पशु भी हैं। वहाँ वृक्ष हैं और वहाँ की धरती मरकतों से बनी है। ऐसी है भगवान् की सृष्टि! इस प्रसंग में श्रील भक्ति विनोद ठाकुर का गीत है—*केशव! तुया जगत् विचित्र*—हे केशव! आपकी सृष्टि रंग-बिरंगी तथा नाना किस्मों से पूर्ण है। भूविज्ञानी, वनस्पतिविज्ञानी तथा अन्य तथाकथित विज्ञानी अन्य लोकों के विषय में मनोकल्पना करते हैं, किन्तु उनकी विविधताओं का अनुमान न लगा पाने के कारण वे झूठे ही यह कल्पना करते हैं कि इस लोक को छोड़कर अन्य सारे लोक शून्य, निर्जन तथा धूल से भरे हैं। इस तरह वे ब्रह्माण्ड में विद्यमान विभिन्न किस्मों का अनुमान तक न लगा सकने पर भी अपने ज्ञान से गर्वित रहते हैं और अपनी ही क्षमता वाले लोगों द्वारा विद्वान माने जाते हैं। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (२.३.१९) में कहा गया है—*श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः*—भौतिकतावादी नेताओं की प्रशंसा कुत्ते, सुअर, ऊँट तथा गधे करते हैं, जो स्वयं भी बड़े पशु हैं। मनुष्य को बड़े पशु द्वारा प्रदत्त ज्ञान से संतुष्ट नहीं होना चाहिए। प्रत्युत उसे शुकदेव गोस्वामी जैसे सिद्ध पुरुष से ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। *महाजनो येन गतः स पन्थाः*—हमारा कर्तव्य है कि महाजनों के उपदेशों का पालन करें। महाजनों की संख्या बारह है और शुकदेव गोस्वामी उनमें से एक हैं (*भागवत* ६.३.२०)।

स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः ।
प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम् ॥

वैयासकि ही शुकदेव गोस्वामी हैं। वे जो कुछ भी कहते हैं वह तथ्यात्मक है। यही पूर्ण ज्ञान है।

नानारण्यपशुव्रातसङ्कुलद्रोण्यलङ्कृतः ।
चित्रद्रुमसुरोद्यानकलकण्ठविहङ्गमः ॥ ७॥

शब्दार्थ

नाना—अनेक प्रकार के; अरण्य-पशु—जंगली जानवर; व्रात—झुंड; सङ्कुल—पूर्ण; द्रोणि—घाटियाँ; अलङ्कृतः—सुन्दर ढंग से सजायी गई; चित्र—किस्में; द्रुम—वृक्ष; सुर-उद्यान—देवताओं का बगीचा; कलकण्ठ—चहकती हुए; विहङ्गमः—पक्षी।

त्रिकूट पर्वत के नीचे की घाटियाँ अनेक प्रकार के जंगली जानवरों से सुशोभित हैं और देवताओं के उद्यानों में जो वृक्ष हैं उन पर नाना प्रकार के पक्षी सुरीली तान से चहकते रहते हैं।

सरित्सरोभिरच्छोदैः पुलिनैर्मणिवालुकैः ।
देवस्त्रीमज्जनामोदसौरभाम्ब्वनिलैर्युतः ॥ ८॥

शब्दार्थ

सरित्—नदियों; सरोभिः—तथा झीलों से; अच्छोदैः—निर्मल जल से पूर्ण; पुलिनैः—किनारे; मणि—छोट-छोटे रत्नों से; वालुकैः—बालू के कणों से मिलते-जुलते; देव-स्त्री—देवताओं की स्त्रियाँ; मज्जन—(जल में) स्नान द्वारा; आमोद—शारीरिक सुगंध; सौरभ—अत्यन्त सुगंधित; अम्बु—जल; अनिलैः—तथा वायु से; युतः—(त्रिकूट पर्वत के वातावरण से) समृद्ध।

त्रिकूट पर्वत में अनेक नदियाँ तथा झीलें हैं जिनके किनारे बालू के कणों के सदृश छोटे-छोटे रत्नों से ढके हैं। उनका जल मणियों की भाँति निर्मल है। जब देवताओं की स्त्रियाँ उनमें स्नान करती हैं, तो उनके शरीरों से जल तथा पवन सुगन्धि ग्रहण कर लेते हैं जिससे वायुमण्डल और भी सुगन्धित हो जाता है।

तात्पर्य : इस भौतिक जगत में भी अनेक प्रकार के जीव हैं। पृथ्वी लोक के जीव सामान्यतया अपने शरीरों की दुर्गन्ध रोकने के लिए बाहर से सुगन्धित पदार्थ लगाते हैं, किन्तु यहाँ हम पाते हैं कि देवताओं की स्त्रियों की शारीरिक सुगंधि से नदियाँ, झीलें, वायु तथा त्रिकूट पर्वत का सारा वातावरण भी सुगंधित हो जाता है। चूँकि उच्चलोकों की स्त्रियों के शरीर अत्यन्त सुन्दर होते हैं अतएव हम सहज ही कल्पना कर सकते हैं कि वैकुण्ठ की स्त्रियों या वृन्दावन की गोपियों के शरीर कितने सुन्दर होंगे ?

तस्य द्रोण्यां भगवतो वरुणस्य महात्मनः ।
उद्यानमृतुमन्नाम आक्रीडं सुरयोषिताम् ॥ ९॥
सर्वतोऽलङ्कृतं दिव्यैर्नित्यपुष्पफलद्रुमैः ।

मन्दारैः पारिजातैश्च पाटलाशोकचम्पकैः ॥ १० ॥
चूतैः पियालैः पनसैराम्रैराम्रातकैरपि ।
क्रमुकैर्नारिकेलैश्च खर्जूरैर्बीजपूरकैः ॥ ११ ॥
मधुकैः शालतालैश्च तमालैरसनार्जुनैः ।
अरिष्टोडुम्बरप्लक्षैर्वटैः किंशुकचन्दनैः ॥ १२ ॥
पिचुमर्दैः कोविदारैः सरलैः सुरदारुभिः ।
द्राक्षेक्षुरम्भाजम्बुभिर्बदर्यक्षाभयामलैः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उस पर्वत (त्रिकूट) की; द्रोण्याम्—घाटी में; भगवतः—महापुरुष; वरुणस्य—वरुण देव का; महा-आत्मनः—भगवान् का महान् भक्त; उद्यानम्—बगीचा; ऋतुमत्—ऋतुमत; नाम—नामक; आक्रीडम्—आमोद-प्रमोद का स्थान; सुर-योषिताम्—देवताओं की स्त्रियों के; सर्वतः—सर्वत्र; अलङ्कृतम्—सुन्दर ढंग से सजाया हुआ; दिव्यैः—देवताओं से सम्बन्धित; नित्य—सदैव; पुष्प—फूलों; फल—तथा फलों के; द्रुमैः—वृक्षों से; मन्दारैः—मन्दार से; पारिजातैः—पारिजात से; च—भी; पाटल—पाटल; अशोक—अशोक; चम्पकैः—चम्पा से; चूतैः—आम के विशेष फलों से; पियालैः—पियाल फलों से; पनसैः—पनस फल से; आम्रैः—आमों से; आम्रातकैः—आम्रातक नामक खट्टे फलों से; अपि—भी; क्रमुकैः—क्रमुक फलों से; नारिकेलैः—नारियल वृक्षों से; च—तथा; खर्जूरैः—खजूर के वृक्षों से; बीजपूरकैः—अनारों से; मधुकैः—मधुक फलों से; शाल-तालैः—ताड़ फलों से; च—तथा; तमालैः—तमाल वृक्षों से; असन—असन वृक्ष; अर्जुनैः—अर्जुन वृक्षों से; अरिष्ट—अरिष्ट फलों से; उडुम्बर—उडुम्बर का बड़ा वृक्ष; प्लक्षैः—प्लक्ष वृक्ष से; वटैः—बरगद के पेड़ से; किंशुक—गंधविहीन लाल फूलों से; चन्दनैः—चंदन के वृक्षों से; पिचुमर्दैः—पिचुमर्द फूलों से; कोविदारैः—कोविदार फलों से; सरलैः—सरल वृक्षों से; सुर-दारुभिः—सुर-दारु वृक्षों से; द्राक्षा—अंगूर; इक्षुः—गन्ना; रम्भा—केला; जम्बुभिः—जम्बु फलों से; बदरी—बदरी फल; अक्ष—अक्ष फल; अभय—अभय फल; आमलैः—आमलकी या आँवलों के फलों से।

त्रिकूट पर्वत की घाटी में ऋतुमत् नामक उद्यान था। यह उद्यान महान् भक्त वरुण का था और यह देवांगनाओं का क्रीड़ास्थल था। यहाँ सभी ऋतुओं में फूल-फल उगते रहते थे। इनमें से मन्दार, पारिजात, पाटल, अशोक, चम्पक, आम्रविशेष (चूत), पियाल, पनस, आम, आम्रातक, क्रमुक, नारियल, खजूर तथा अनार मुख्य थे। वहाँ पर मधुक, ताड़, तमाल, असन, अर्जुन, अरिष्ट, उडुम्बर, प्लक्ष, बरगद, किंशुक तथा चन्दन के वृक्ष थे। वहाँ पर पिचुमर्द, कोविदार, सरल, सुरदारु, अंगूर, गन्ना, केला, जम्बु, बदरी, अक्ष, अभय तथा आमलकी भी थे।

बिल्वैः कपित्थैर्जम्बीरैर्वृतो भल्लातकादिभिः ।
तस्मिन्सरः सुविपुलं लसत्काञ्चनपङ्कजम् ॥ १४ ॥
कुमुदोत्पलकह्लारशतपत्रश्रियोर्जितम् ।
मत्तषट्पदनिर्घुष्टं शकुन्तैश्च कलस्वनैः ॥ १५ ॥
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्राह्वैः सारसैरपि ।
जलकुक्कुटकोयष्टिदात्यूहकुलकूजितम् ॥ १६ ॥
मत्स्यकच्छपसञ्चारचलत्पद्मरजःपयः ।
कदम्बवेतसनलनीपवञ्जुलकैर्वृतम् ॥ १७ ॥

कुन्दैः कुरुबकाशोकैः शिरीषैः कूटजेङ्गुदैः ।
कुब्जकैः स्वर्णयूथीभिर्नागपुन्नागजातिभिः ॥ १८ ॥
मल्लिकाशतपत्रैश्च माधवीजालकादिभिः ।
शोभितं तीरजैश्चान्यैर्नित्यर्तुभिरलं द्रुमैः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

बिल्वैः—बिल्व वृक्ष; कपित्थैः—कपित्थ वृक्ष; जम्बीरैः—जम्बीर वृक्षों से; वृतः—घिरा हुआ; भल्लातक-आदिभिः—भल्लातक आदि वृक्षों से; तस्मिन्—उस उद्यान में; सरः—झील; सु-विपुलम्—अत्यन्त विशाल; लसत्—चमकीली; काञ्चन—सुनहरी; पङ्क-जम्—कमलों से पूर्ण; कुमुद—कुमुद पुष्पों का; उत्पल—उत्पल फूल; कह्लार—कह्लार फूल; शतपत्र—तथा शत्रपत्र के फूल; श्रिया—सौन्दर्य सहित; ऊर्जितम्—श्रेष्ठ; मत्त—नशेमें; षट्-पद—भौंरे; निर्घुष्टम्—गुनगुनाते; शकुन्तैः—पक्षियों की चहचहाहट से; च—तथा; कल-स्वनैः—मीठे गानों से; हंस—हंस; कारण्डव—कारण्डव; आकीर्णम्—झुंड में; चक्राह्वैः—चक्रावकों के साथ; सारसैः—सारसों से; अपि—भी; जलकुक्कुट—जल मुर्गाबी; कोयष्टि—कोयष्टि; दात्यूह—दात्यूह; कुल—झुंड; कूजितम्—कूजन करते; मत्स्य—मछली; कच्छप—तथा कछुवों का; सञ्चार—गति करने से; चलत्—विक्षुब्ध; पद्म—कमलों के; रजः—परागकण से; पयः—जल (अलंकृत था); कदम्ब—कदम्ब; वेतस—बेंत; नल—नल, नरकट; नीप—नीप; वञ्जुलकैः—वंजुलक से; वृतम्—घिरा हुआ; कुन्दैः—कुंदों से; कुरुबक—कुरुबक; अशोकैः—अशोक से; शिरीषैः—शिरीष से; कूटज-—कुटज; इङ्गुदैः—इंगुद से; कुब्जकैः—कुब्जक से; स्वर्ण-यूथीभिः—स्वर्णयूथी से; नाग—नाग; पुन्नाग—पुन्नाग; जातिभिः—जाति से; मल्लिका—मल्लिका; शतपत्रैः—शतपत्रों से; च—भी; माधवी—माधवी; जालकादिभिः—जालका आदि से; शोभितम्—अलंकृत; तीरजैः—किनारे पर उगे हुए; च—तथा; अन्यैः—अन्य; नित्य-ऋतुभिः—सभी ऋतुओं में; अलम्—प्रचुर मात्रा में; द्रुमैः—वृक्षों से (फल-फूल से लदे)।

उस उद्यान में एक विशाल सरोवर था, जो चमकीले सुनहरे कमल के फूलों से तथा कुमुद, कह्लार, उत्पल एवं शतपत्र फूलों से भरा था जिनसे पर्वत की सुन्दरता में वृद्धि हो रही थी। उस उद्यान में बिल्व, कपित्थ, जम्बीर तथा भल्लातक वृक्ष भी थे। मदमत्त भौंरें मधुपान कर रहे थे और अत्यन्त मधुर ध्वनि में गान करने वाले पक्षियों की चहचहाहट के साथ वे भी गुनगुना रहे थे। सरोवर में हंसों, कारण्डवों, चक्रावकों, सारसों, जलमुर्गियों, दात्यूहों, कोयष्टियों तथा अन्य चहचहाते पक्षियों के झुंड के झुंड थे। मछलियों तथा कछुवों के इधर-उधर तेजी से गति करने से कमल के फूलों से जो परागकण गिरे थे उनसे जल सुशोभित था। सरोवर के चारों ओर कदम्ब, वेतस, नल, नीप, वञ्जुलक, कुन्द, कुरुबक, अशोक, शिरीष, कूटज, इंगुद, कुब्जक, स्वर्णयूथी, नाग, पुन्नाग, जाति, मल्लिका, शतपत्र, जालका तथा माधवी लताएँ थीं। सरोवर के तट ऐसे वृक्षों से भलीभान्ति अलंकृत थे, जो सभी ऋतुओं में फूल तथा फल देने वाले थे। इस तरह पूरा पर्वत भव्य रूप से सजा हुआ था।

तात्पर्य : त्रिकूट पर्वत की नदियों तथा सरोवरों के ऐसे विशद वर्णन से यह निर्णय निकलता है कि पृथ्वी पर ऐसे अति-सौन्दर्य की कोई तुलना नहीं हो सकती। किन्तु अन्य लोकों में ऐसे अनेक आश्चर्य हैं। उदाहरणार्थ, हमें ज्ञात होता है कि वहाँ बीस लाख किस्म के वृक्ष हैं, किन्तु ये सभी पृथ्वी पर नहीं

पाये जाते। *श्रीमद्भागवत* ब्रह्माण्ड की सारी बातों का पूरा-पूरा ज्ञान प्रदान करता है। इसमें न केवल इस ब्रह्माण्ड का वर्णन मिलता है, अपितु इसके परे आध्यात्मिक जगत का भी विवरण दिया गया है। कोई भी व्यक्ति *श्रीमद्भागवत* में वर्णित भौतिक तथा आध्यात्मिक जगतों के इन वर्णनों को चुनौती नहीं दे सकता। पृथ्वी से चन्द्रमा तक जाने के प्रयास असफल हो चुके हैं, किन्तु पृथ्वी के लोग यह समझ सकते हैं कि अन्य लोकों में क्या-क्या विद्यमान है। इसके लिए किसी कल्पना की आवश्यकता नहीं है, कोई भी व्यक्ति *श्रीमद्भागवत* से वास्तविक ज्ञान ग्रहण करके संतुष्ट हो सकता है।

तत्रैकदा तद्गिरिकाननाश्रयः
करेणुभिर्वारणयूथपश्चरन् ।
सकण्टकं कीचकवेणुवेत्रवद्
विशालगुल्मं प्ररुजन्वनस्पतीन् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ पर; एकदा—एक बार; तत्-गिरि—उस पर्वत (त्रिकूट) के; कानन-आश्रयः—जंगल में रहने वाला; करेणुभिः—हथिनियों के साथ; वारण-यूथ-पः—हाथियों का अगुवा; चरन्—विचरण करते (सरोवर की ओर); स-कण्टकम्—काँटों से भरा स्थान; कीचक-वेणु-वेत्र-वत्—विभिन्न नामों वाले पौधों तथा लताओं से युक्त; विशाल-गुल्मम्—अनेक जंगल; प्ररुजन्—तोड़ते हुए; वनः-पतीन्—वृक्षों और पौधों को।

एक बार हाथियों का अगुवा (प्रमुख), जो त्रिकूट पर्वत के जंगल में रह रहा था, अपनी हथिनियों के साथ सरोवर की ओर घूमने निकला। उसने अनेक पौधों, लताओं तथा गुल्मों को उनके चुभने वाले काँटों की परवाह न करते हुए नष्ट-भ्रष्ट कर डाला।

यद्गन्धमात्राद्धरयो गजेन्द्रा
व्याघ्रादयो व्यालमृगाः सखड्गाः ।
महोरगाश्चापि भयाद्द्रवन्ति
सगौरकृष्णाः सरभाश्चमर्यः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

यत्-गन्ध-मात्रात्—उस हाथी की गन्ध से ही; हरयः—सिंह; गज-इन्द्राः—अन्य हाथी; व्याघ्र-आदयः—बाघ जैसे हिंस्र पशु; व्याल-मृगाः—अन्य हिंस्र पशु; सखड्गाः—गैंडे; महा-उरगाः—बड़े-बड़े सर्प; च—भी; अपि—निस्सन्देह; भयात्—डर से; द्रवन्ति—भाग रहे थे; स—सहित; गौर-कृष्णाः—उनमें से कुछ श्वेत और कुछ काले; सरभाः—सरभ; चमर्यः—तथा चमरी भी।

उस हाथी की सुगंध पाकर ही सारे अन्य हाथी, बाघ तथा अन्य हिंस्र पशु—यथा सिंह, गैंडे, सर्प एवं सफेद-काले सरभ—भय से भाग गये। यहाँ तक कि चमरी हिरन भी भाग निकले।

वृका वराहा महिषर्क्षशल्या
गोपुच्छशालावृकमर्कटाश्च ।
अन्यत्र क्षुद्रा हरिणाः शशादय-
श्चरन्त्यभीता यदनुग्रहेण ॥ २२॥

शब्दार्थ

वृकाः—लोमड़ियाँ; वराहाः—भालू; महिष—भैंसा; ऋक्ष—रीछ; शल्याः—सेही; गोपुच्छ—एक प्रकार का हिरन; शालावृक—भेड़िए; मर्कटाः—बन्दर; च—और; अन्यत्र—और कहीं; क्षुद्राः—छोटे पशु; हरिणाः—हिरन; शश-आदयः—खरगोश इत्यादि; चरन्ति—(जंगल में) इधर-उधर घूमते हैं; अभीताः—निर्भय; यत्-अनुग्रहेण—उस हाथी की कृपा से।

इस हाथी की कृपा से लोमड़ी, भेड़िया, भैंसें, भालू, सुअर, गोपुच्छ, सेही, बन्दर, खरहे, हिरन तथा अन्य छोटे पशु जंगल में सर्वत्र विचरण करते रहते थे। वे उससे भयभीत नहीं थे।

तात्पर्य : लगभग सभी पशु इसी हाथी से नियंत्रित थे। फिर भी, यद्यपि वे भयरहित होकर विचरण कर सकते थे, किन्तु सम्मान के कारण वे उसके समक्ष खड़े नहीं रहते थे।

स घर्मतप्तः करिभिः करेणुभि-
र्वृतो मदच्युत्करभैरनुद्रुतः ।
गिरिं गरिम्णा परितः प्रकम्पयन्
निषेव्यमाणोऽलिकुलैर्मदाशनैः ॥ २३॥
सरोऽनिलं पङ्कजरेणुरूषितं
जिघ्रन्विदूरान्मदविह्वलेक्षणः ।
वृतः स्वयूथेन तृषार्दितेन तत्
सरोवराभ्यासमथागमद्द्रुतम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

सः—वह (हाथियों का सरदार); घर्म-तप्तः—पसीने से तर; करिभिः—अन्य हाथियों से; करेणुभिः—तथा हथिनियों से; वृतः—घिरा हुआ; मद-च्युत्—मुँह से लार चुवाता; करभैः—हाथी के बच्चों द्वारा; अनुद्रुतः—पीछे-पीछे चलते हुए; गिरिम्—उस पर्वत को; गरिम्णा—शरीर के भार से; परितः—चारों ओर; प्रकम्पयन्—हिलाते हुए; निषेव्यमाणः—सेवित होकर; अलिकुलैः—भौंरों के झुंड द्वारा; मद-अशनैः—शहद पिये हुए; सरः—सरोवर या झील से; अनिलम्—मन्द वायु; पङ्कज-रेणु-रूषितम्—कमल फूलों से रज ले जाता हुआ; जिघ्रन्—सूँघते हुए; विदूरात्—दूर से; मद-विह्वल—मदग्रस्त होकर; ईक्षणः—चितवन; वृतः—घिरा हुआ; स्व-यूथेन—अपने ही संगियों से; तृषार्दितेन—प्यास से पीड़ित; तत्—उस; सरोवर-अभ्यासम्—सरोवर के किनारे तक; अथ—इस प्रकार; अगमत्—गया; द्रुतम्—तुरन्त।

वह हाथियों का राजा गजपति झुंड के अन्य हाथियों तथा हथिनियों से घिरा था और उसके पीछे-पीछे हाथी के बच्चे चल रहे थे। वह अपने शरीर के भार से त्रिकूट पर्वत को चारों ओर से हिला रहा था। उसके पसीना छूट रहा था, उसके मुँह से मद की लार टपक रही थी और उसकी दृष्टिमद से भरी थी। मधु पी-पीकर भौंरें उसकी सेवा कर रहे थे और वह दूर से ही उन कमल फूलों के रजकणों की सुगंध का अनुभव कर रहा था, जो मन्द पवन द्वारा उस सरोवर से ले जाई

जा रही थी। इस प्रकार प्यास से पीड़ित अपने साथियों से घिरा वह गजपति तुरन्त सरोवर के तट पर आया।

विगाह्य तस्मिन्नमृताम्बु निर्मलं
हेमारविन्दोत्पलरेणुरूषितम् ।
पपौ निकामं निजपुष्करोद्धृत-
मात्मानमद्भिः स्नपयन्गतक्लमः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

विगाह्य—घुस कर; तस्मिन्—उस सरोवर में; अमृत-अम्बु—अमृत के समान स्वच्छ जल; निर्मलम्—अत्यन्त विमल; हेम—अत्यन्त शीतल; अरविन्द-उत्पल—कुमुदिनियों तथा कमलों से; रेणु—धूल से; रूषितम्—मिश्रित; पपौ—पिया; निकामम्—पूर्णतया सन्तुष्ट होने तक; निज—अपनी; पुष्कर-उद्धृतम्—सूँड़ से खींच कर; आत्मानम्—अपने आप; अद्भिः—जल से; स्नपयन्—पूरी तरह स्नान करते हुए; गत-क्लमः—थकान से मुक्त हुआ।

वह हाथियों का राजा (गजपति गजेन्द्र) सरोवर में घुस गया, पूरी तरह नहाया और अपनी थकान से मुक्त हो गया। तब उसने अपनी सूँड़ से जी भरकर शीतल, स्वच्छ अमृततुल्य जल पिया जो कमलपुष्पों तथा जल कुमुदिनियों की रज से मिश्रित था।

स पुष्करेणोद्धृतशीकराम्बुभि-
र्निपाययन्संस्नपयन्यथा गृही ।
घृणी करेणुः करभांश्च दुर्मदो
नाचष्ट कृच्छ्रं कृपणोऽजमायया ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (गजराज); पुष्करेण—अपनी सूँड़ से; उद्धृत—खींचकर; शीकर-अम्बुभिः—तथा जल छिड़क कर; निपाययन्—उन्हें पिलाकर; संस्नपयन्—तथा उन्हें नहला कर; यथा—जिस प्रकार; गृही—गृहस्थ; घृणी—सदैव (अपने परिवार वालों पर) दयालु; करेणुः—हथिनियों को; करभान्—बच्चों को; च—तथा; दुर्मदः—अपने परिवार वालों से अत्यधिक आसक्त; न—नहीं; आचष्ट—विचार किया; कृच्छ्रम्—कठिनाई से; कृपणः—आध्यात्मिक ज्ञान से रहित; अज-माययाभगवान् की माया के प्रभाव से।

आध्यात्मिक ज्ञान से विहीन एवं अपने परिवार वालों के प्रति अत्यधिक आसक्त मनुष्य की भाँति उस हाथी ने कृष्ण की बहिरंगा शक्ति (माया) द्वारा मोहित होकर अपनी पत्नी तथा बच्चों को स्नान कराया और पानी पिलाया। उसने अपनी सूंड़ में सरोवर का पानी भरकर उन सबके ऊपर छिड़का। उसने इस प्रयास में लगने वाले कठिन श्रम की परवाह नहीं की।

तं तत्र कश्चिन्नृप दैवचोदितो

ग्राहो बलीयांश्चरणे रुषाग्रहीत् ।
यदृच्छयैवं व्यसनं गतो गजो
यथाबलं सोऽतिबलो विचक्रमे ॥ २७॥

शब्दार्थ

तम्—उसको (गजेन्द्र को); तत्र—वहाँ (जल में); कश्चित्—कोई; नृप—हे राजा; दैव-चोदितः—भाग्य द्वारा प्रेरित; ग्राहः—घड़ियाल; बलीयान्—अत्यन्त शक्तिशाली; चरणे—उसका पाँव; रुषा—क्रुद्ध होकर; अग्रहीत्—पकड़ लिया; यदृच्छया—भाग्य से होने वाली; एवम्—ऐसी; व्यसनम्—खतरनाक परिस्थिति; गतः—प्राप्त करके; गजः—हाथी ने; यथा-बलम्—अपनी शक्ति के अनुसार; सः—वह; अति-बलः—अत्यधिक प्रयास से; विचक्रमे—बाहर निकलने का प्रयत्न किया।

हे राजा! भाग्यवश एक बलिष्ठ घड़ियाल ने, जो हाथी पर क्रुद्ध था, जल के भीतर से ही हाथी के पैर पर आक्रमण कर दिया। हाथी निश्चय ही बलवान् था और उसने भाग्य द्वारा प्रेषित इस संकट से अपनी शक्ति भर अपने को छुड़ाने का प्रयत्न किया।

तथातुरं यूथपतिं करेणवो
विकृष्यमाणं तरसा बलीयसा ।
विचुक्रुशुर्दीनधियोऽपरे गजाः
पार्ष्णिग्रहास्तारयितुं न चाशकन् ॥ २८॥

शब्दार्थ

तथा—तब; आतुरम्—उस विकट स्थिति में; यूथ-पतिम्—हाथियों के सरदार को; करेणवः—उसकी पत्नियाँ; विकृष्यमाणम्—आक्रमण किया जाकर; तरसा—बल से; बलीयसा—बल से (घड़ियाल के); विचुक्रुशुः—चिंग्घाड़ने लगीं; दीन-धियः—अल्पज्ञ; अपरे—दूसरे; गजाः—हाथी; पार्ष्णि-ग्रहाः—पीछे से पकड़ कर; तारयितुम्—मुक्त कराने के लिए; न—नहीं; च—भी; अशकन्—असमर्थ थे।

तत्पश्चात् गजेन्द्र को उस विकट स्थिति में देखकर उसकी पत्नियाँ अत्यधिक दुखी हुईं और चिंग्घाड़ने लगीं। दूसरे हाथियों ने गजेन्द्र की सहायता करनी चाही, किन्तु घड़ियाल की विपुल शक्ति के कारण वे उसे पीछे से पकड़कर उसको नहीं बचा सके।

नियुध्यतोरेवमिभेन्द्रनक्रयोर्
विकर्षतोरन्तरतो बहिर्मिथः ।
समाः सहस्रं व्यगमन्महीपते
सप्राणयोश्चित्रममंसतामराः ॥ २९॥

शब्दार्थ

नियुध्यतोः—लड़ते हुए; एवम्—इस प्रकार; इभ-इन्द्र—हाथी; नक्रयोः—तथा घड़ियाल का; विकर्षतोः—खींचना; अन्तरतः—जल के भीतर; बहिः—जल के बाहर; मिथः—एक दूसरे; समाः—वर्ष; सहस्रम्—एक हजार; व्यगमन्—बीत गये; मही-पते—हे राजा; स-प्राणयोः—दोनों जीवित; चित्रम्—आश्चर्यजनक; अमंसत—विचार किया; अमराः—देवताओं ने।

हे राजा! इस तरह हाथी तथा घड़ियाल जल के बाहर तथा जल के भीतर एक दूसरे को घसीट कर एक हजार वर्षों तक लड़ते रहे। इस लड़ाई को देखकर देवतागण अत्यन्त चकित थे।

ततो गजेन्द्रस्य मनोबलौजसां
कालेन दीर्घेण महानभूद्व्ययः ।
विकृष्यमाणस्य जलेऽवसीदतो
विपर्ययोऽभूत्सकलं जलौकसः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; गज-इन्द्रस्य—हाथियों के राजा का; मनः—उत्साहबल का; बल—शारीरिक शक्ति; ओजसाम्—तथा इन्द्रियों का बल; कालेन—वर्षों से लड़ते रहने से; दीर्घेण—दीर्घकालीन; महान्—महान्; अभूत्—गई; व्ययः—चुक; विकृष्यमाणस्य—(घड़ियाल द्वारा) खींचा जाने वाला; जले—जल में; अवसीदतः—घट गई (मानसिक, शारीरिक तथा ऐन्द्रिय शक्ति); विपर्ययः—विपरीत; अभूत्—हो गया; सकलम्—सभी; जल-ओकसः—घड़ियाल, जिसका घर जल है।.

तत्पश्चात् जल के भीतर खींचे जाने तथा दीर्घकाल तक लड़ते रहने के कारण हाथी की मानसिक, शारीरिक तथा ऐन्द्रिय शक्ति घटने लगी। इसके विपरीत जल का पशु होने के कारण घड़ियाल का उत्साह, उसकी शारीरिक शक्ति तथा ऐन्द्रिय शक्ति बढ़ती रही।

तात्पर्य : हाथी तथा घड़ियाल की लड़ाई में अन्तर यह था कि हाथी अत्यन्त शक्तिशाली होते हुए भी पराये स्थान अर्थात् जल में था। एक हजार वर्षों की लड़ाई के दौरान उसे कोई भोजन नहीं मिल पाया जिससे उसकी शारीरिक शक्ति क्षीण होने लगी। उसकी शारीरिक शक्ति क्षीण होने से मन भी कमजोर पड़ने लगा और उसकी इन्द्रियाँ शिथिल पड़ गईं। किन्तु घड़ियाल तो जल का प्राणी ठहरा। उसे किसी तरह की कठिनाई नहीं हुई। उसे भोजन प्राप्त होता रहा जिससे उसे मानसिक शक्ति तथा ऐन्द्रिय प्रोत्साहन मिल रहा था। इस प्रकार जहाँ हाथी का बल घटता गया वहाँ घड़ियाल अधिकाधिक बलशाली बनता गया। अब हम इससे यह शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं कि माया से लड़ाई लड़ने में हम ऐसी स्थिति में न पड़ें जिस से कि हमारा बल, उत्साह तथा इन्द्रियाँ शक्तिपूर्वक लड़ने में असमर्थ हो जाँए। हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन ने सचमुच माया के विरुद्ध युद्ध ठान लिया है, जिसमें सारे जीव सभ्यता की झूठी मानसिकता लेकर सड़ रहे हैं। इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सिपाहियों में सदा शारीरिक शक्ति, उत्साह तथा ऐन्द्रिय शक्ति रहनी चाहिए। स्वस्थ रहने के लिए उन्हें अपने को सामान्य दशा में रखना चाहिए। सामान्य दशा हर एक के लिए एक सी नहीं होती; अतएव वर्णाश्रम विभाग बनाए गए हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास। विशेषतया इस कलियुग में संन्यास लेने की सलाह नहीं दी जाती है—

अश्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्।

देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत॥

(*ब्रह्मवैवर्त पुराण*)

इससे हम समझ सकते हैं कि इस युग में *संन्यास* आश्रम इसलिए वर्जित हैं क्योंकि लोग बलवान् नहीं हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने चौबीस वर्ष की आयु में संन्यास लेकर आदर्श प्रस्तुत किया है, लेकिन सार्वभौम भट्टाचार्य तक ने श्री चैतन्य महाप्रभु को सतर्क रहने की सलाह दी थी क्योंकि उन्होंने कम उम्र में संन्यास ले लिया था। हम प्रचार करने के लिए तरुण बालकों को संन्यास प्रदान करते हैं, किन्तु ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि वे संन्यास ग्रहण करने के योग्य नहीं हैं। इसमें कोई हानि नहीं है यदि कोई यह सोचे कि वह संन्यास के योग्य नहीं है; किन्तु यदि वे काम-भोग से सदैव विचलित होते हों तो उन्हें ऐसे आश्रम में जाना चाहिए जिसमें काम-भोग की छूट हो अर्थात् वे गृहस्थ आश्रम में जाँए। यदि कोई एक स्थान में अशक्त जान पड़े तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि वह घड़ियाल रूपी माया से लड़ना बन्द कर दे। हमें कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी चाहिए जैसाकि गजेन्द्र ने किया था। उसी के साथ वह गृहस्थ भी बना रह सकता है यदि वह काम-भोग में लिप्त रहने से संतुष्ट है। लड़ाई बन्द करने की आवश्यकता नहीं है। अतएव श्री चैतन्य महाप्रभुने संस्तुति की है—*स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभिः।* कोई अपने अनुकूल किसी भी आश्रम में रह सकता है; संन्यास ग्रहण करना अनिवार्य नहीं है। यदि उसका मन काम-भोग से चलायमान रहता है, तो वह गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर सकता है। लेकिन उसे लड़ाई जारी रखनी चाहिए। जो दिव्य पद को प्राप्त नहीं है उसके लिए कृत्रिम रूप से संन्यास ग्रहण करना कोई श्रेय की बात नहीं है। यदि संन्यास उपयुक्त नहीं है, तो वह गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होकर माया के विरुद्ध बलपूर्वक लड़ सकता है। लेकिन उसे लड़ाई बन्द करके भागना नहीं चाहिए।

इत्थं गजेन्द्रः स यदाप सङ्कटं
प्राणस्य देही विवशो यदृच्छया ।
अपारयन्नात्मविमोक्षणे चिरं
दध्याविमां बुद्धिमथाभ्यपद्यत ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस प्रकार से; गज-इन्द्रः—हाथियों के राजा ने; सः—उस; यदा—जब; आप—प्राप्त की; सङ्कटम्—ऐसी भयानक स्थिति; प्राणस्य—जीवन की; देही—देहधारी; विवशः—परिस्थितिवश असहाय; यदृच्छया—दैव की इच्छा से; अपारयन्—

असमर्थ होकर; आत्म-विमोक्षणे—अपनी रक्षा करने में; चिरम्—दीर्घकाल तक; दध्यौ—गम्भीरतापूर्वक सोचने लगा; इमाम्—यह; बुद्धिम्—निर्णय; अथ—तत्पश्चात्; अभ्यपद्यत—प्राप्त हुआ, पहुँचा।

जब गजेन्द्र ने देखा कि वह दैवी इच्छा से घड़ियाल के चंगुल में है और बंधन में फंसकर परिस्थितिवश असहाय है एवं अपने को संकट से नहीं उबार सकता तो वह मारे जाने से अत्यन्त भयभीत हो उठा। फलस्वरूप उसने दीर्घकाल तक सोचा और अन्ततोगत्वा वह इस निर्णय पर पहुँचा।

तात्पर्य : प्रत्येक प्राणी इस भौतिक जगत में जीवन-संघर्ष में लगा है। प्रत्येक प्राणी अपने को संकट से बचाना चाहता है, किन्तु जब वह अपने को नहीं बचा पाता और यदि वह पवित्र है, तो वह भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (७.१६) में हुई है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

चार प्रकार के पवित्र व्यक्ति—जो संकट में हों, जिन्हें धन की आवश्यकता हो, जो ज्ञान की खोज में हों तथा जो जिज्ञासु हों—अपनी रक्षा के लिए या प्रगति करने के लिए भगवान् की शरण ग्रहण करते हैं। गजेन्द्र ने इस संकट की घड़ी में भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करने का निर्णय लिया। पर्याप्त विचार करने के बाद ही वह इस सही निर्णय पर पहुँचा था। ऐसा निर्णय पापी व्यक्ति नहीं ले पाता। अतएव *भगवद्गीता* में कहा गया है कि जो पवित्र (सुकृती) हों वे यह निर्णय ले सकते हैं कि संकट या विषम परिस्थिति में मनुष्य को कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी चाहिए।

न मामिमे ज्ञातय आतुरं गजाः
कुतः करिण्यः प्रभवन्ति मोचितुम् ।
ग्राहेण पाशेन विधातुरावृतो-
ऽप्यहं च तं यामि परं परायणम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; माम्—मुझको; इमे—ये सब; ज्ञातयः—मित्र तथा सम्बन्धी (अन्य हाथी); आतुरम्—मेरे दुख में; गजाः—हाथी; कुतः—कैसे; करिण्यः—मेरी पत्नियाँ; प्रभवन्ति—समर्थ हैं; मोचितुम्—(इस संकटमय स्थिति से) उद्धार करने में; ग्राहेण—घड़ियाल से; पाशेन—फन्दे से; विधातुः—भाग्य के; आवृतः—बन्दी; अपि—यद्यपि (मैं ऐसी स्थिति में हूँ); अहम्—मैं; च—भी; तम्—उस (भगवान्) की; यामि—शरण में जाता हूँ; परम्—जो दिव्य हैं; परायणम्—जो ब्रह्मा तथा शिव जैसे सम्मानित देवताओं की भी शरण हैं।

जब मेरे मित्र तथा अन्य सम्बन्धी हाथी मुझे इस संकट से नहीं उबार सके तो मेरी पत्नियों

का तो कहना ही क्या? वे कुछ नहीं कर सकतीं। यह दैवी इच्छा थी कि इस घड़ियाल ने मुझ पर आक्रमण किया है, अतएव मैं उन भगवान् की शरण में जाता हूँ जो हर एक को, यहाँ तक कि महापुरुषों को भी, सदैव शरण प्रदान करते हैं।

तात्पर्य : यह संसार *पदं पदं यद्विपदाम्* रूप में वर्णित है, जिसका अर्थ है कि इसमें पग-पग पर संकट है। मूर्ख झूठे ही सोचता है कि वह इस भौतिक जगत में सुखी है, लेकिन वास्तव में वह सुखी रहता नहीं क्योंकि जो ऐसा सोचता है, वह मोहग्रस्त है। इसमें पग-पग पर और हर क्षण संकट है। आधुनिक सभ्यता में मनुष्य सोचता है कि यदि उसके पास सुन्दर मकान और सुन्दर कार हो तो उसका जीवन पूर्ण है। पाश्चात्य जगत में, विशेषतया अमरीका में, अच्छी कार रखना उत्तम बात है, किन्तु ज्योंही वह सड़क पर कार चलाता है, तो उसे संकट बना रहता है क्योंकि वह किसी भी क्षण दुर्घटना में मर सकता है। आँकड़े बताते हैं कि ऐसी दुर्घटनाओं में अनेक लोग मरते रहते हैं। अतएव यदि हम वास्तव में यह सोचते हैं कि यह संसार अत्यन्त सुखमय स्थान है, तो यह हमारा अज्ञान है। असली ज्ञान यह है कि यह भौतिक जगत संकट से पूर्ण है। हम वहीं तक जीवन-संघर्ष कर सकते हैं जहाँ तक हमारी बुद्धि काम करती है और इस तरह अपनी सुरक्षा करने का प्रयास कर सकते हैं, किन्तु जब तक भगवान् कृष्ण हमें अन्तत: संकट से बचा नहीं लेते तब तक हमारे प्रयास व्यर्थ रहेंगे। अतएव प्रह्लाद महाराज कहते हैं (*भागवत* ७.९.१९)—

बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह
नार्तस्य चागदम् उदन्वति मज्जतो नौ:।
तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहाञ्जसेष्टस्
तावद् विभो तनुभृतां त्वदुपेक्षितानाम्॥

भले ही हम सुखी रहने या इस भौतिक जगत के संकटों का सामना करने के लिए कितने ही साधन क्यों न ढूँढ लें, किन्तु जब तक हमारे प्रयासों को भगवान् से पुष्टि नहीं मिल जाती, वे हमें कभी सुखी नहीं बना पाएँगे। जो लोग भगवान् की शरण लिए बिना सुखी रहने का प्रयास करते हैं, वे मूढ़ हैं। *न मां दुष्कृतिनो मूढा: प्रपद्यन्ते नराधमा:।* अधम लोग कृष्णभावनामृत ग्रहण करने से मना कर देते हैं क्योंकि वे सोचते हैं कि कृष्ण की रक्षा के बिना ही वे अपनी रक्षा कर लेंगे। यह उनकी भूल है।

गजेन्द्र का निर्णय सही था। ऐसी संकटमय स्थिति में उसने भगवान् की शरण ग्रहण की।

यः कश्चनेशो बलिनोऽन्तकोरगात्
प्रचण्डवेगादभिधावतो भृशम् ।
भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भया
न्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि ॥ ३३॥

शब्दार्थ

यः—जो (भगवान्); कश्चन—कोई; ईशः—परमनियन्ता; बलिनः—अत्यन्त शक्तिशाली; अन्तक-उरगात्—मृत्यु लाने वाले काल रूपी विशाल सर्प से; प्रचण्ड-वेगात्—अत्यन्त भयानक बल से; अभिधावतः—पीछा करता हुआ; भृशम्—निरन्तर (हर घड़ी); भीतम्—मृत्यु से डरा हुआ; प्रपन्नम्—शरणागत (भगवान् के); परिपाति—रक्षा करता है; यत्-भयात्—जिस भगवान् के डर से; मृत्युः—साक्षात् मृत्यु; प्रधावति—भाग जाती है; अरणम्—हर एक के वास्तविक आश्रय; तम्—उसकी; ईमहि—मैं शरण लेता हूँ।

भगवान् निश्चय ही हर एक को ज्ञात नहीं हैं, किन्तु वे हैं अत्यन्त शक्तिशाली तथा प्रभावशाली। अतएव यद्यपि काल रूपी सर्प प्रचण्ड वेग से निरन्तर मनुष्य का पीछा कर रहा है और उसे निगलने को उद्यत है, तथापि, यदि वह इस सर्प से डरकर भगवान् की शरण में जाता है, तो भगवान् उसे संरक्षण प्रदान करते हैं क्योंकि भगवान् के भय से मृत्यु भी भाग जाती है। अतएव मैं उनकी शरण ग्रहण करता हूँ जो महान् एवं शक्तिशाली परम सत्ता हैं और हर एक के वास्तविक आश्रय हैं।

तात्पर्य : जो बुद्धिमान् है, वह समझता है कि सबों के ऊपर एक महान् तथा परम सत्ता है। यह महान् सत्ता निर्दोष व्यक्तियों को उत्पातों से बचाने के लिए विभिन्न अवतारों में प्रकट होती है। जैसाकि *भगवद्गीता* (४.८) में पुष्टि हुई है—*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्*—भगवान् दो कारणों से—दुष्कृती का संहार करने तथा अपने भक्तों की रक्षा करने के उद्देश्य से विभिन्न अवतारों में प्रकट होते हैं। गजेन्द्र ने इनकी ही शरण में जाने का निर्णय लिया। यह बुद्धिमानी है। मनुष्य को उस महान् भगवान् को जानना चाहिए और अपने शरण ग्रहण करनी चाहिए। भगवान् प्रत्यक्ष रूप में हमें यह उपदेश देने आते हैं कि किस तरह सुखी रहा जाये। केवल मूर्ख तथा धूर्त ही बुद्धि होते हुए भी इस परम सत्ता—परम पुरुष—को नहीं देख पाते। *श्रुति मन्त्र* (*तैत्तिरीय उपनिषद्* २.८) में कहा गया है—

भीषास्माद् वातः पवते भीषोदेति सूर्यः ।

भीषास्माद् अग्निश्चन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥

भगवान् के भय से ही वायु बहती है, सूर्य उष्मा तथा प्रकाश का वितरण करता है और मृत्यु हर एक का पीछा करती है। इस प्रकार एक परमनियन्ता है, जैसाकि *भगवद्गीता* से (९.१०) पुष्टि होती है—*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।* यह भौतिक जगत परमनियन्ता के कारण ही इतनी अच्छी तरह कार्य करता है। अतएव कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति समझ सकता है कि किसी परमनियन्ता का अस्तित्व है। यही नहीं, यह परमनियन्ता साक्षात् कृष्ण के रूप में, चैतन्य महाप्रभु के रूप में तथा भगवान् रामचन्द्र के रूप में उपदेश देने तथा अपने उदाहरण से भगवान् की शरण में जाने की विधि बताने के लिए प्रकट होते हैं। फिर भी जो लोग अधम हैं (दुष्कृती) वे उनकी शरण में नहीं जाते (*न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः*)।

भगवद्गीता में भगवान् स्पष्ट कहते हैं—*मृत्युः सर्व हरश्चाहम्*—''मैं सर्वभक्षी मृत्यु हूँ।'' अतः मृत्यु वह प्रतिनिधि है, जो प्रत्येक देहधारी जीव से सब कुछ छीन लेती है। कोई यह नहीं कह सकता ''मैं मृत्यु से नहीं डरता।'' यह झूठी धारणा है। हर व्यक्ति मृत्यु से डरता है। किन्तु जो भगवान् की शरण ग्रहण करता है, वह मृत्यु से बच सकता है। कोई यह तर्क कर सकता है ''क्या भक्त नहीं मरता?'' इसका उत्तर यह है कि निश्चित रूप से उसे शरीर त्यागना होगा क्योंकि शरीर भौतिक है। किन्तु अन्तर इतना ही है कि जो कृष्ण की पूर्ण शरण में जाता है और कृष्ण द्वारा रक्षित होता है, उसका वर्तमान शरीर अन्तिम शरीर होता है, उसे फिर से भौतिक शरीर धारण करके मृत्यु के अधीन नहीं होना होता। *भगवद्गीता* (४.९) में इसका आश्वासन दिया गया है—*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन*—भक्त अपना शरीर त्यागने के बाद भौतिक शरीर नहीं पाता अपितु वह भगवद्धाम वापस जाता है। हम सदा संकट में रहते हैं क्योंकि किसी भी क्षण मृत्यु हो सकती है। ऐसा नहीं है कि गजेन्द्र ही मृत्यु से भयभीत था। हरएक को मृत्यु से डरना चाहिए क्योंकि हरएक व्यक्ति काल-रूपी घड़ियाल द्वारा पकड़ा जाता है और किसी भी क्षण मर सकता है। अतएव सर्वोत्तम मार्ग यही है कि भगवान् श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करने का प्रयास किया जाये और इस संसार के जीवन-संघर्ष से बचा जाये जिसमें मनुष्य को बारम्बार जन्म लेना और मरना पड़ता है। इसी ज्ञान तक पहुँचना जीवन का चरम लक्ष्य है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के आठवें स्कंध के अन्तर्गत ''गजेन्द्र पर संकट'' नामक दूसरे अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुये